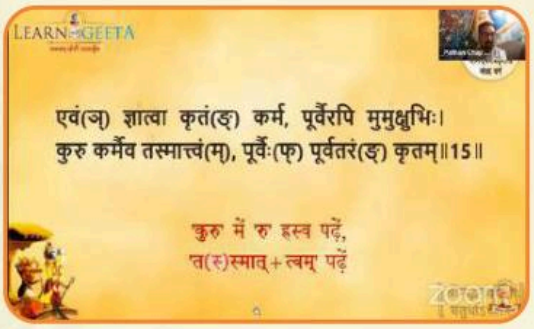
गीता चिन्तनिका

गीता चिन्तनिका सत्र - 4, 5, 6वाँ अध्याय - 02 01 23

https://www.youtube.com/live/SHA5j3vBEDM







* सूत्र संचालक - मीनू जी झंवर
* आरंभ प्रार्थना - अनीता जी बिलैया
* दीप प्रज्ज्वलन - मनीषा जी एवं कृति जी बर्धन
* चतुर्थ अध्याय पठन - गीताव्रती प्रदीप जी अग्रवाल
* पंचम अध्याय पठन - गीताव्रती डॉ. अपर्णा जी होलकुंडकर
* षष्ठम अध्याय पठन - गीताव्रती सरिता जी फडणवीस
* चतुर्थ अध्याय चिंतन - गीताव्रती श्रावणी जी नाईक
* पंचम अध्याय चिंतन - गीताव्रती अजीत जी काकड़े
* षष्ठम अध्याय चिंतन - गीताव्रती कुमुद जी गुप्ता
* धन्यवाद ज्ञापन - अनुजा जी लाहोटी
* तकनीकी सहायक - गोपाल जी नाथावत/सुनील जी धूत
* समापन प्रार्थना - गीताव्रती प्रिया जी अग्रवाल

चिंतन सार :

चतुर्थ अध्याय - गीताव्रती श्रावणी नाईक, पुणे

श्रीभगवान् ने अर्जुन से कर्म तथा पदार्थों का स्वरूप से त्याग करके तत्त्वदर्शी, अनुभवी और शास्त्रज्ञ महापुरुष के पास जाकर ज्ञान प्राप्त करने की प्रचलित प्रणाली की प्रशंसा की और इसके लिये अर्जुन को आज्ञा दी। जो ज्ञान श्रीभगवान् ने सूर्य को, सूर्य ने अपने पुत्र मनु को और मनु ने पुत्र राजा इक्ष्वाकु को दिया था।

शरीर, मन, इंद्रियां, बुद्धि आदि वस्तुयें हमे परहित करने के लिये मिली है। नि:स्वार्थभाव से केवल दूसरों के हित के लिये कर्म करना ही कर्मयोग हो जाता है।

कर्म ईश्वर को अर्पण करना, भगवान् के नाम का जप, भगवद्कृपा प्राप्ति हेतु शास्त्र साधनों का अध्ययन ही 'यज्ञ' है और यज्ञ के अनेकों स्वरूप हैं।

पंचम अध्याय चिंतन - गीताव्रती अजीत काकड़े जी, पुणे

उन्होंने भगवान् के उपदेशों को अपनी भाषा में बोलना आरंभ किया कि जिसके मन, बुद्धि से सभी विकार, पाप, ताप, अहम, आसक्ति मिट जाते है, सृष्टि में निर्मित सभी प्राणिमात्र के साथ शास्त्र मर्यादानुसार यथायोग्य व्यवहार करते हुये भी आत्मबुद्धि एक ही रहती है और उनके सुख व दुःख में वह समभाव रखता है, वो योगी है। उसे परब्रह्म स्वरूप का ज्ञान हो जाता है। ऐसा साधक भगवान् को सभी शुभकर्मों का भोक्ता मान, परमात्वतत्त्व को उसी का सुहृद दृढ़ता पूर्वक मान लेता है, उसे परमशांति की प्राप्ति होती है।

भगवान् के मत में ज्ञानयोग व कर्मयोग; दोनों का परिणाम एक ही है। दोनो ही साधनों की पूर्णता होने पर साधक संसार बंधन से मुक्त होकर आत्मसाक्षात्कार कर लेता है। अतः दोनों ही मोक्षप्राप्ति के साधन है।

कर्मयोगी जो संसार बंधनों से मुक्त है नित्य सन्न्यासी समझने योग्य है। कर्मयोग के बिना सांख्ययोग (जिसमें कर्म का उसके स्वरुप से त्याग, अलिप्तता) का साधन कठिन है। सांख्ययोग में कर्मयोग आवश्यक है पर कर्मयोग में सांख्ययोग की आवश्यकता नहीं। दोनों योग कल्याणकारी होने पर भी कर्मयोग को ही भगवान् श्रेष्ठ बताते है।

षष्ठम अध्याय चिंतन - गीताव्रती कुमुद जी गुप्ता, मुजफ्फरनगर

इसमें छठे अध्याय में भगवान् ने अर्जुन को ध्यानयोग का उपदेश देने का औचित्य समझा।अर्जुन के साथ साथ मानवमात्र के कल्याण के मार्ग प्रशस्त करते हुये निर्वाण, परमशान्ति के योग को भगवान् समझाते है। निर्विकार, जितेंद्रिय होकर, केवल परमात्मातत्त्व ही चराचर के कण कण में चिन्मय सत्तामात्र रूप से परिपूर्ण है यह निश्चय करें। अपने कुशासन या मृगछाला को स्थापन करें। अंतःकरण को राग द्वेषादि से मुक्त, साथ ही 'मैं' – 'मेरापन' के भाव से रहित भयमुक्त होकर, ब्रह्मचारी नियमों के पालन के साथ भगवत्प्राप्ति का शुद्ध उद्देश्य जो साधक रखता है, वो निःस्पृह योगी निर्वाण पद को प्राप्त करता है।

जब अर्जुन ने ध्यानयोग की सिद्धता में मन की चंचलता को बाधक माना, और अंतसमय में योग से विचलित साधक किस गति को प्राप्त होता है इस सन्देह को जब मधुसूदन से पूछा तो श्रीकृष्ण ने प्रश्न का समाधान करते हुये कहा कि कल्याणकारी मार्ग का नित्य क्रमण करने वाले ध्यानयोगी को दुर्गति नहीं मिलती। पारमार्थिक पूँजी योगभ्रष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होती। वह जीवनमुक्त बुद्धिमान योगियों के कुल में जन्म लेता है ।

'यतते च ततो भूयः संसिद्धौ' अर्थात् एक से अधिक जन्म लेने वाला सर्वप्रथम मनुष्य जन्म में कर्मादि साधना करके शुद्ध हुआ। तत्पश्चात् स्वर्गादि लोकों में जाकर भी भोगों से लिप्त होने से शुद्ध होता है। जो योगी प्रयत्नपूर्वक यत्न करता है, तथा जो अनेकों जन्मों से सिद्ध हुआ है और फिर श्रीमानों के घर में जन्म लेकर तत्परतापूर्वक साधन में लगकर शुद्ध होता है। इस प्रकार तीन जन्मों में शुद्ध होना साधक का अनेकजन्मसंसिद्ध होना है। भगवान् अर्जुन को योगी होने को कहते हैं। तपस्वियों, ज्ञानियों और कर्मियों से योगी श्रेष्ठ है। अतः भगवान् कहते हैं -

'तस्मात् योगी भवार्जुन'